|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 12: भक्तियोग

2/2 (श्लोक 11-20), शनिवार, 23 नवंबर 2024

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/lipGZaXFhdA

भक्ति की महिमा से प्रस्फुटित लक्षण

भगवान श्रीकृष्ण की प्रार्थना, दीप प्रज्वलन एवम् श्रीगुरु चरणकमलों की वन्दना के पश्चात भक्तियोग नामक बारहवें अध्याय के उत्तरार्द्ध के विवेचन सत्र का शुभारम्भ हुआ।

हम लोग बारहवें अध्याय का चिन्तन कर रहे हैं। पिछले सप्ताह हमने दसवें श्लोक तक का चिन्तन किया था। आज हम ग्यारहवें श्लोक से आरम्भ करेंगे, परन्तु जो साधक पिछले सत्र में उपस्थित नहीं हो पाए थे उनके लिए संक्षेप में पहले आठवें से दसवें श्लोक तक की चर्चा करेंगें क्योंकि ग्यारहवाँ श्लोक इन श्लोकों से सम्बद्ध है।

भक्तियोग श्रीमद्भगवद्गीता की चरम सीमा है, इससे उत्तम कोई अध्याय नहीं, इससे सरल कोई और योग नहीं है। कर्मयोग और ज्ञानयोग ये भी श्रीभगवान ने दूसरे और तीसरे अध्याय में बताए हैं, उसका विस्तार से विवेचन भी किया है परन्तु ज्ञानयोग या कर्मयोग का विवेचन करते समय भी भगवान भक्ति की महिमा कहकर ही आगे बढ़ते हैं। यहाँ पर हमारे मन में, हमारे आशङ्कित रहने के स्वभाव के कारण एक आशङ्का उत्पन्न होती है, श्रीभगवान के मन में यह बात है कि मेरी उपासना करते रहो। श्रीभगवान कहते भी हैं-

मन्मना भव मद्भक्तो

मामेकं(वँ) शरणं(वँ) व्रज,

सबको छोड़ कर मेरी शरण में आ जाओ, जब श्रीभगवान इस तरह की बात कह रहे हैं तो हमारे लिए यह समझना अत्यन्त आवश्यक है कि वे अपने अर्थात् श्रीकृष्ण की शरण में आने की बात नहीं कह रहे हैं। वे तो मात्र माध्यम हैं जो श्रीमद्भगवद्गीता कह रहे हैं, श्रीमद्भगवद्गीता के अतिरिक्त पूरे महाभारत में जब-जब श्रीकृष्ण ने कुछ कहा है तो श्रीकृष्ण उवाच या वासुदेव उवाच का प्रयोग हुआ है, मात्र श्रीमद्भगवद्गीता में जब वे कुछ कहते हैं तो श्रीभगवानुवाच का प्रयोग हुआ है। ऐसा अन्तर इस कारण आया है क्योंकि जब श्रीमद्भगवद्गीता का प्राकट्य हुआ तब उनके मुख से परम पिता के रूप में भगवद्वाणी निकल रही थी। श्रीभगवान का उसी ओर इङ्गित निर्देश है, हम जब पन्द्रहवाँ अध्याय सीखेंगे तो बात और स्पष्ट हो जाएगी। वे उस परमधाम के बारे में भी बताएँगे जहाँ श्रीभगवान का (परमात्मा का) निवास है। श्रीभगवान उसी ओर इङ्गित कर रहे हैं, वे श्रीकृष्ण की शरण में जाने की नहीं अपितु परम पिता परमात्मा की शरण में जाने की बात बता रहे हैं और उसके लिए भक्ति का मार्ग

सर्वोत्तम है। हमें भवसागर से पार उतरना हो तो दो विधाएँ हैं। एक कि हम सीधे उतर जाएँ और पार उतरने के लिए हाथ-पाँव मारें, ये कठिन है। श्रीभगवान ने इसी अध्याय में स्वयं कहा है-

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।।12.5।।

उस अव्यक्त की उपासना बहुत कठिन है। हमारे सामने विग्रह हो, हमारे सामने साक्षात मूर्ति हो तो भक्ति सहज रूप से प्रस्फुटित हो सकती है। परन्तु श्रीभगवान चराचर जगत में सर्वत्र व्याप्त हैं। जब इस दृष्टि से देखते हैं तो कठिन हो जाता है क्योंकि हम स्वयं मानव जीवन में आएँ हैं। दो हाथ, दो पाँव और पञ्च इन्द्रियाँ लेकर आएँ हैं और उसी स्वरूप में हमारे समक्ष प्रतिमा विद्यमान हो तो हमारे लिए सुलभ हो जाता है। अतः श्रीभगवान इस अध्याय में सगुण भक्ति की महिमा का वर्णन करते हैं। इसके लिए क्या करना होगा श्रीभगवान बताते हैं-

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।12.8।।

श्रीभगवान कहते हैं, मुझमें मन को लगा दो। परन्तु मात्र मन लगा देने से नहीं होता है क्योंकि मन तो लग जाता है परन्तु बुद्धि प्रश्न करती है। अतः मन और बुद्धि दोनों को लगाना होगा। किसी भी कार्य की सफलता हेतु मन और बुद्धि का साथ-साथ एक दिशा में चलाना आवश्यक होता है, उसी तरह भक्ति के लिए भी यह आवश्यक है। भक्ति अपवाद नहीं हो सकती। कोई विद्यार्थी कक्षा में बैठा है, शिक्षक श्यामपट्ट पर गणित का प्रश्न हल कर रहे हैं, विद्यार्थी की आँखें देख रहीं हैं, बुद्धि समझने का प्रयास कर रही है, परन्तु उसका मन घर पर चला गया तो शिक्षक जो बता रहे हैं, उसे वह समझ नहीं पाएगा और तब परीक्षा में वह अच्छे अङ्क नहीं प्राप्त कर सकता। परीक्षा में अच्छे अङ्क लाने के लिए मन और बुद्धि दोनों का समर्पण करना होगा और तभी वह छात्र सफल हो सकता है।

खेल के मैदान पर भी ऐसा ही करना होगा, शरीर को भी जोड़ना होगा। ये जो जुड़ाव है इसी का तो नाम है, योग। हम सभी कहते हैं न कि कुल योग कितना हुआ अर्थात् जोड़ कितना हुआ? दो और दो का मिलकर चार बनना, ये जो जोड़ है, जुड़ाव है, यही योग है। मन, बुद्धि और शरीर का जुड़ाव हो तो योग हो जाता है। इतनी सरल परिभाषा है योग की, हम जो भी करें, मन, बुद्धि और शरीर का जुड़ाव हो और इसके लिए अष्टाङ्ग योग बताया है। पहले आसन करना है, इस हेतु सन्तुलन बनाना होता है।

वृक्षासन करते समय, पहले एक पैर पर खड़ा होना पड़ता है, फिर दृष्टि स्थिर करनी पड़ती है, दृष्टि का मन से सम्बन्ध है, दृष्टि स्थिर होने पर मन और फिर शरीर स्थिर होता है। शरीर अस्थिर होने पर डगमग होने लगता है। जिन्होंने वृक्षासन किया होगा उन्हें पता होगा। सहारे की आवश्यकता पड़ जाती है क्योंकि वहाँ जुड़ाव नहीं है। शरीर के स्थिर होने के लिए मन और बुद्धि का जुड़ाव आवश्यक है। जिस समय जुड़ाव हुआ योग घट गया। आसन से आरम्भ होता है योग, फिर प्राणायाम। प्राणायाम से भी मन जुड़ा हुआ है, श्वान झपट्टा मारे तो हमारी श्वांस ऊपर नीचे होने लगती है। किधर जाएँ समझ नहीं पाते, हर झटके के साथ ऑक्सीजन का स्तर कम हो जाता है और इससे श्वांस ऊपर नीचे होने लगती हैं। चाहे वो किसी भी प्रकार का झटका हो, चाहे भय हो, दुःख हो, निराशा हो या उद्वेग हो। हर तरह के झटके से ऑक्सीजन का स्तर कम हो जाता है और फिर बुद्धि शून्य हो जाती है। बच्चों को परीक्षा केन्द्र में कल का याद किया भी याद नहीं आता। फिर जब वे लम्बी-लम्बी श्वांस लेकर अपनी श्वांस को नियन्त्रित करते हैं तो धीरे-धीरे सब ठीक होता है। यदि हम प्राणायाम के माध्यम से पहले ही अपनी श्वांस को नियन्त्रित कर लें तो ऐसे झटके नहीं लगते और ऑक्सीजन का स्तर कभी कम नहीं होता। ऐसा करने वाला योगी कहलाता है। मन और बुद्धि को साथ लगाने के बाद, तुम मुझमें ही निवास करोगे इसमें कोई संशय नहीं है। परन्तु मन और बुद्धि दोनों को निवेश करना होगा। कुछ लोगों को लगता है कि श्रीभगवान ने यह बड़ी कठिन बात कही है। भगवान ने नवें श्लोक में उसका भी समाधान कर दिया। अब पूजा में बैठते हैं और मोबाइल साथ लेकर बैठते हैं जो थोड़ा भी आवश्यक नहीं है। भगवान को नहलाते समय जरा सी भी घण्टी बजते ही भगवान को ठण्डे जल में छोड़ मोबाइल देखने लगते हैं। अरे! भगवान को भी ठण्ड लगती होगी। हम मोबाइल बाद में भी देख सकते हैं, हम जो दिनभर में हजारों सन्देश देखते हैं, उसमें से एक-आध ही काम के होते हैं। कम से कम पूजा के समय तो मोबाइल अलग रखें। अगर घण्टी बजे भी तो पाँच मिनट बाद बात करने से बहुत अन्तर नहीं पड़ता। पूजा के समय भी हम एकाग्र नहीं हो पाते, मन में विचार चलते रहते हैं। भगवान की पूजा करते समय, टीका लगाते हुए, पुष्प

अर्पित करते हुए भी हम रसोई की चिन्ता करने लगते हैं, सब्जी क्या बनेगी इसकी चिन्ता करने लगते हैं। अरे! पूजा करो न ध्यान से, ये सब बाद में कर लेंगे। लेकिन नहीं कर पाते श्रीभगवान ने कहा ठीक है यह नहीं कर पाते, तो-

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय।।12.9।।

श्रीभगवान कहते हैं, तू अपना चित्त मेरे में नहीं लगा सकता, तुम समर्थ नहीं हो, अचल रूप से मेरे में चित्त को अर्पित करने में तो हे धनञ्जय! तुम अभ्यास करो। अभ्यास के योग द्वारा, प्रयत्न के द्वारा मुझे प्राप्त करने की इच्छा करो। प्रतिदिन अभ्यास करो, पाँच मिनट, दस मिनट, लगा ध्यान, बैठ जा स्थिर होकर सीधा।

समं(ङ्) कायशिरोग्रीवं(न्), धारयन्नचलं(म्) स्थिरः।

शरीर, ग्रीवा और सिर को एक सीध में करके, अचल होकर बैठ जाओ।
पाँच मिनट भी सीधे नहीं बैठ पाते, पीठ में दर्द होने लगता है, अभ्यास करना पड़ेगा। विवेचक ने बताया आज अपने कार्यालय में सङ्कल्प करें कि झुकेंगे नहीं तीन घण्टे तक सीधे बैठे रहें। ऐसा आसानी से किया जा सकता है, मात्र सङ्कल्प करने की आवश्यकता होती है, मैं आज इतने समय तक सीधा बैठा रहूँगा। कुर्सी पर यदि बैठते समय अपने ऊपरी शरीर का पूरा भार नितम्ब के स्थान पर अपने जाँघों पर रखा जाए तो घण्टों सीधे बैठे रह सकते हैं।

तुझे अभ्यास करना भी कठिन लगता है, श्रीभगवान इतने दयालु हैं आगे दसवें श्लोक में बताते हैं-

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि।।12.10।।

श्रीभगवान कहते हैं, तू अभ्यास करने में भी असमर्थ है, तो कोई बात नहीं। तू मात्र मेरा काम करता रह। तू जो भी काम कर रहा है तो सोच कि मेरे लिए कर रहा है। रसोई कर रहे हैं, तो भी सोचें कि श्रीभगवान के लिए कर रहें हैं, उनका भोग बना रहे हैं। इस भाव के साथ बनी रसोई का स्वाद भी अद्‌भुत होगा। आप व्यवसाय कर रहे हैं तो हर आने वाले की यह सोच कर सेवा करें कि मेरे भगवान श्रीकृष्ण लला ही आए हैं, हम उनकी ही सेवा कर रहे हैं।

इस भाव के साथ शबरी ने तपस्या की, वे कोई सीधे होकर नहीं बैठी। उन्होंने कोई ध्यान धारणा नहीं की, उन्हें कोई आसन, प्राणायाम नहीं आते थे। वे सात-आठ वर्ष की बालिका थीं। उनके पिताजी कुछ मेमने लाए। शबरी को ये उछलते-कूदते मेमने बहुत प्यारे लगे। शबरी उनके साथ दिनभर प्यार से खेलती थी। एक दिन जब वे मेमनों के साथ खेल रही थीं, उनके पिताजी जो भील जाति के प्रमुख थे उन्होंने कहा खेल लो बेटा कुछ दिन और आखिर तो इन मेमनों को कटना ही है। शबरी ने पूछा ऐसा क्यों? उसके पिता बोले बेटा तुम्हारा विवाह होगा, उसमें मुझे बहुत सारे लोगों को भोज देना होगा, मुझे भी उन सभी ने भोज दिया है तो मुझे भी तुम्हारे विवाह में सबको बुलाना होगा और भोज देना होगा और उसके लिए ये सभी मेमने कटेंगे। उनके समाज में यह सामान्य बात थी। शबरी इस कारण दुःखी हो गईं, रात को सो नहीं पाईं, सोचने लगीं, उन्होंने विचार किया कि मैं घर से भाग जाऊँ तो न मेरा विवाह होगा न मेमने कटेंगे। शबरी आधी रात को घर से भाग गईं, भागती रहीं, रात भर भागती रहीं, यह भी पता नहीं था जाना कहाँ है। सुबह का उजाला देखा तो इस डर से कि कोई देख न ले वृक्ष पर चढ़ कर छुप गईं। रात भर जगी थीं तो नींद लग गई। आवाज सुनकर नींद खुली तो देखा नीचे उनके पिताजी लोगों के साथ उन्हें खोज रहे हैं, उनका नाम लेकर आवाज लगा रहे हैं, शबरी कहाँ है तू। शबरी श्वांस रोककर बैठी रही। डर था पकड़ी गई तो मेमने कट जाएंगे। वे लोग खोज कर चले गए, पुनः रात होने पर वे नीचे उतरीं और फिर दौड़ने लगीं, रात भर दौड़ीं। धूल से सनी शबरी थक गई तो एक पेड़ पर चढ़ कर छुप गई। उजाला होने पर कुछ भगवा वस्त्र धारण किए लोग दिखे। ये मतङ्ग ऋषि का आश्रम था, आश्रम के लोग आश्रम में साफ सफाई आदि विभिन्न कार्य कर रहे थे। भले लोग दिख रहे थे तो शबरी के मन में विचार आया इनके पास जाकर यहीं रहना चाहिए और वे आश्रम में चली गईं। वहाँ लोगों ने नाम पूछा तो डर से नहीं बताया कि मुझे घर भेज देंगे, मेमनों की चिन्ता थी। फिर उन्हें मतङ्ग ऋषि के पास ले गए। मतङ्ग ऋषि ने प्यार से बालों पर हाथ घुमा के पूछा

कौन हो तुम, शबरी ने कहा मत पूछिए मेरा नाम मुझे यहीं रख लीजिए। मैं यहाँ के सारे काम कर दूँगी। मुझे यहाँ से कहीं भेजो मत, मेमने मर जाएंगे। मतङ्ग ऋषि ने उन्हें आश्रम में रख लिया। दो-चार वर्ष बाद जब मतङ्ग ऋषि वहाँ से जाने लगे तो सबको बताया उनका समाधि का समय आ गया है और बोले किसी का कोई प्रश्न हो तो पूछ ले। सब अपने प्रश्न पूछने लगे, किसी ने ब्रह्म के बारे में, किसी ने भक्ति के बारे में प्रश्न पूछे। मतङ्ग ऋषि ने बोला बेटा शबरी तुम भी पूछ लो। मैं फिर मिलूँगा नहीं। शबरी को कुछ समझ में नहीं आ रहा था उन्हेंने पूछा क्या मुझे भगवान मिलेंगे? मतङ्ग ऋषि मुस्कुराते हुए बोले तुम्हारे मुखमण्डल पर मुझे दिख रहा है, तुझे भगवान के दर्शन होंगे। इसी आश्रम में तुम्हें दर्शन देने प्रभु श्रीराम आयेंगे। तुम्हे निश्चित दर्शन होंगे, छोटी बच्ची शबरी नृत्य करने लगीं। मतङ्ग ऋषि समाधिस्थ हो गए और सारे शिष्य धीरे-धीरे आश्रम से चले गए। शबरी अकेले रह गईं, उन्होंने सोचा श्रीभगवान आयेंगे तो तैयारी करनी चाहिए। भगवान को खिलाने के लिए फल एकत्रित किए, लगा पता नहीं कैसे हों तो चख के देखा। जो मीठे थे उन्हें रखती शेष फैंक देतीं। मन में आया भगवान किस दिशा से आएंगे, मैंने तो पूछा नहीं फिर सभी दिशाओं में सफाई की, काँटें हटाए और फूल बिखेरे। पाद प्रक्षालन के लिए गर्म जल की व्यवस्था की। नदी से जल लाकर रोज सुबह गर्म करतीं। फिर सोचा भगवान कब आएंगे ये तो पता नहीं तो मुझे सोना नहीं चाहिए। भगवान तो इतने कृपालु होंगे कि मुझे कष्ट न हो इस कारण जगाएंगे नहीं। राम राम जपते हुए जागती रहने लगीं। दिनभर काम करती, जल लातीं उसे गर्म करतीं, सफाई करतीं, फूल बिखेरतीं, फल एकत्रित करतीं। जो फल चखती वही उनका भोजन हो जाता, उनको समय ही नहीं मिलता था। मेरे राम मेरे राम जपती रहतीं। आसपास के लोग उनको पगली कहने लगे। वे प्रतिदिन सारी तैयारी करतीं। राम-राम जपते हुए छोटी बच्ची से वृद्धा हो गईं। फिर किसी ने प्रभु श्रीराम को बताया शबरी आपकी वर्षों से प्रतीक्षा कर रही हैं, आपको मतङ्ग ऋषि के आश्रम में उनके पास जाना होगा। फिर श्रीराम माता सीता और लक्ष्मण के साथ वहाँ आए। शबरी ने भगवान को सामने से आते देखा तो उनकी आँखें भर आईं, यही होंगे मेरे राम, आँखें इतनी भर आईं कि सब धुँधला हो गया, शबरी स्थिर हो गईं, प्रभु श्रीराम बोले शबरी! मैं आ गया। शबरी ने चरणों पर अपना सर रख दिया, आँसू बहने लगे और पाद प्रक्षालन होने लगा। अचानक ध्यान आया वर्षों से जल गर्म कर रखती आ रही हूँ, जल लाकर पाँव पखारना चाहिए। शबरी कहतीं हैं- प्रभु क्षमा करें, मैंने गर्म जल रखा है पाँव पखारने के लिए, लेकर आती हूँ। भगवान कह रहे हैं अरे! तुमने तो अपने आँसुओं से ही मेरे पाँव पखार दिये हैं, अब और पाद प्रक्षालन की आवश्यकता नहीं है। शबरी का प्रत्येक काम भगवान के लिए बन गया। मदर्थमपि कर्माणि। भगवान कहते हैं शबरी मैं तेरी तपस्या से प्रसन्न हूँ, तुम्हें क्या चाहिए, बोलो। माता शबरी कहतीं हैं, प्रभु मुझे भक्ति सिखाइए। जो स्वयं भक्ति की मूर्ति हैं, उन्हें क्या भक्ति सीखाना है, परन्तु वहाँ जङ्गल के अन्य लोग भी उपस्थित थे, यह देखने के लिए कि शबरी के प्रभु श्रीराम आए हैं। माता शबरी ने भक्ति का उपदेश देने को कहा है। भगवान ने शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश किया। विवेचक ने बताया मैंने परम पूज्य स्वामी जी से पूछा शबरी जैसे महान भक्त को भक्ति के उपदेश देने की क्या आवश्यकता थी। इतना कह देते तुमने जो किया है वही भक्ति है। परम पूज्य स्वामी जी ने कहा भगवान ने शबरी को उपदेश नहीं दिया है, उन्हें तो मानपत्र दिया है। यह नवधा भक्ति का उपदेश तो हम सभी के लिए और वहाँ खड़े वनमाली लोगों के लिए दिया है।

मदर्थमपि कर्माणि को माता शबरी का जीवन दर्शाता है। अब श्रीभगवान शबरी के जैसे जीवन की बात कह रहे हैं, यह तो कठिन है। भगवान और सरल आगे कहते हैं-

12.11

अथैतदप्यशक्तोऽसि, कर्तुं(म्) मद्योगमाश्रितः|
सर्वकर्मफलत्यागं(न्), ततः(ख्) कुरु यतात्मवान्||11||

अगर मेरे योग (समता) के आश्रित हुआ (तू) इस (पूर्व श्लोक में कहे गये साधन) को भी करने में (अपने को) असमर्थ (पाता) है, तो मन इन्द्रियों को वश में करके सम्पूर्ण कर्मों के फल की इच्छा का त्याग कर।

विवेचन- तुम मेरे लिए कार्य भी नहीं कर सकते तो कोई बात नहीं, अपनी इन्द्रियों को वश में करो और कर्म के फल का त्याग कर दो। तुम कर्म नहीं कर सकते मेरे लिए तो कर्म के फल को त्याग दो, मुझे अर्पण कर दो। सारे कर्मों के फल की इच्छा का त्याग कर दो, अर्थात् तुम काम करते चले जाओ, फल की इच्छा मत करो।

भगवद्गीता के एक श्लोक की बात हम सभी को बहुत याद रहती है।

**"कर्म किए जा फल की इच्छा मत कर ऐ इंसान।
जैसा कर्म करेगा वैसा फल देगा भगवान।।"**

कर्म फल के त्याग से अद्‌भुत चमत्कार घटित होते हैं। जैसे ही कर्म फल की अपेक्षा है, परिणाम की चिन्ता है, परिणाम गया। जो बच्चा प्रथम आने के लिए पढ़ता है, वह प्रथम नहीं आता कुछ अङ्क कम रह जाते हैं। जो बच्चा मात्र ज्ञान अर्जित करने के लिए पढ़ता है, वह आसानी से प्रथम आ जाता है।

एक ऐसी घटना घटी है। एक माता हमारे लर्न गीता उपक्रम से जुड़ी हैं जो नेपाल से हैं। उन्होंने फोन कर बताया उनका बच्चा पढ़ने में बहुत तेज है, पहले की परीक्षाओं में उच्च अङ्क प्राप्त किये हैं। हार्वर्ड विश्वविद्यालय में नामाङ्कन हेतु प्रयास कर रहा था, तीन बार असफल हो गया और अवसाद ग्रस्त हो गया है। आप बात करें, मैंने बात की। बच्चा बोल रहा था अब मुझसे नहीं होता, मैं यहीं कहीं किसी महाविद्यालय में पढ़ लूँगा। मैंने कहा तुम तीन बार हार्वर्ड में नामाङ्कन हेतु तैयारी कर चुके हो, एक बार और करो परन्तु इस बार वैसे करो जैसे मैं बता रहा हूँ और यह मैं नहीं कह रहा हूँ, यह बात भगवान कह रहे हैं, तुम सभी कर्मों के फल का त्याग कर, हार्वर्ड में नामाङ्कन के लिए नहीं ज्ञान प्राप्त करने के लिए तैयारी करो, पढ़ाई करो। उसने फल की अपेक्षा त्याग कर पढ़ाई की, एक माह बाद परीक्षा दी, परीक्षा के पन्द्रह दिन बाद परिणाम आने पर माँ का फोन आया भैया हार्वर्ड में नामाङ्कन हो गया। जब हम कुछ नहीं चाहते हैं तो वह मिल जाता है। अपेक्षा नहीं होती तो मिल जाता है।

हम बेटी से अपेक्षा नहीं करते हैं। कन्यादान करने के बाद मान लेते हैं कि अब वो मेरी नहीं है। बेटे से सारी अपेक्षा रहती है, बुढ़ापे का यही सहारा बनेगा और फिर वो कुछ करता नहीं करता और बेटी आकर थोड़ा कुछ कर जाती है तो कहते हैं, देखो-देखो मेरी बेटी कितना करती है! अपेक्षा नहीं है तो बेटी थोड़ा करके प्रिय हो जाती है और बेटे से अपेक्षा रहती है, वह करता नहीं तो प्रिय नहीं रहता। क्यों करनी अपेक्षा हम अपनी व्यवस्था स्वयं करेंगे, उनका जीवन उनके पास। अपेक्षा करने से हमारा प्रदर्शन घटता है।

कहते हैं एक बार अकबर और बीरबल शिकार खेलने गए। बहुत भयङ्कर तूफान आया तेज बारिश हुई, नाला बहने लगा, दोनों पेड़ के नीचे अपने घोड़े पर खड़े थे प्रतीक्षा कर रहे थे कि वर्षा रुक जाए। तभी एक विचित्र घटना घटी। एक युवक सिर पर लकड़ियों का गट्ठर उठाए तेज गति से दौड़ते हुए आया एक ही छलाङ्ग में नाला पार कर गया। अकबर देखता रह गया, इतनी लम्बी छलाङ्ग तो मेरा घोड़ा भी नहीं लगा सकता। उसे अपने पास बुलाकर कहा कि तुमने बहुत लम्बी छलाङ्ग लगाई, एक बार फिर से यह गट्ठर उठा कर नाला पार करो तो मैं तुम्हें सोने की मोहर दूँगा, मोहर दिखा भी दिया। युवक बोला इसमें क्या बड़ी बात है, यह तो मेरा प्रतिदिन का काम है। बीरबल हँस पड़ा, अकबर ने पूछा तो कोई बात नहीं कह कर रह गया। युवक दौड़ते हुए गया छलाङ्ग लगाने वाला था लेकिन फिसल कर गिर गया। बीरबल फिर हँस पड़ा तो अकबर ने पूछा कि तुम क्यों हँस रहे हो? बीरबल ने कहा कि महाराज पहले यह केवल लकड़ियों का गट्ठर सिर पर उठा कर चल रहा था। इस बार सोने की मोहर का बोझ भी उस पर चढ़ गया, उसके सिर पर सोने की मोहर की अपेक्षा का बोझ था, अतः फिसल गया, असफल हुआ। उसका प्रदर्शन गिर गया।

इसी प्रकार हमें भी फल की आकाङ्क्षा के बोझ से सावधान रहकर कर्म करना चाहिए। फल का त्याग कर काम करना होगा, हम जो भी काम कर रहे हैं उसका फल मिलेगा परन्तु हम माँगेंगे तो गड़बड़ हो जाएगा।

भगवान ने अगले श्लोक में इस बात की बहुत महत्ता बतायी, कर्मफल के त्याग से क्या घट जाता है, बताया।

12.12

**श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्, ज्ञानाद्ध्यानं(व्ँ) विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्याग:(स्),त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥12.12॥**

अभ्यास से शास्त्रज्ञान श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है (और) ध्यान से (भी) सब कर्मों के फल की इच्छा का त्याग (श्रेष्ठ है)। क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शान्ति प्राप्त हो जाती है।

विवेचन- कर्म फल के त्याग से आपको शान्ति मिल जाएगी क्योंकि मन में जो उथल- पुथल चलती है न कि बहु यह नहीं कर रही, अपेक्षा है, बेटे को पढ़ाया लिखाया, अब बहु आई, बहु सेवा कर ले, अपेक्षा है। नहीं कर रही है तो मन में फड़फड़ाहट है, मन अशान्त हो जाता है। जिस क्षण कर्मफल की अपेक्षा का त्याग हो जाता है उसी क्षण हमारे जीवन में प्रगाढ़ शान्ति आ जाती है।

"अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में,
है जीत तुम्हारे हाथों में और हार तुम्हारे हाथों में।।"

श्रीभगवान नाविक हैं और भवसागर से पार उतरना है तो हम तैर कर नहीं जा सकते। उनकी नाव में बैठ जाएंगे, "है जीत तुम्हारे हाथों में और हार तुम्हारे हाथों में "सौंप देंगे अपने आपको, तुम्हें जो करना है करो, मन करे डूबाओ या पार उतारो, तेरे ऊपर सौंप दिया।

मेरा निश्चय है बस एक यही, एक बार तुम्हे पा जाऊं मैं,
अर्पण कर दूँ दुनिया भर का, सब प्यार तुम्हारे हाथों में ॥

मैं जीवन में आया हूँ तो जीऊँगा पर कैसे,

जो जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ, जैसे जल में कमल का फूल रहे,
मेरे सब गुण दोष समर्पित हों, करतार तुम्हारे हाथों में ॥

और पुनः मानव का जन्म मिल गया तो, यदि आऊँगा तो यही करूँगा,

यदि मानव का मुझे जन्म मिले, तो तेरे चरणों का पुजारी बनूँ,
इस पूजा की एक एक रग का, हो तार तुम्हारे हाथों में ॥
जब जब संसार का कैदी बनूँ, निष्काम भाव से करम करूँ,
फिर अंत समय में प्राण तजूँ, निराकार तुम्हारे हाथों में ॥

मैं निष्काम भाव से काम करता जाऊँ, क्योंकि कर्मफल का त्याग आवश्यक है, यदि अन्त समय में यह अपेक्षा का काँटा अन्दर ही फँसा रह गया तो फिर जन्म होगा।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं,
पुनरपि जननी जठरे शयनम् |

इससे बचना है तो-

भज गोविन्दम् भज गोविन्दम्, गोविन्दं भज मूढ़मते।
संप्राप्ते सन्निहिते काले, न हि न हि रक्षति डुकृञ् करणे।।

अन्त में वो अपेक्षा का काँटा न रहे तो भक्त के जीवन में क्या घटता है, आगे भगवान भक्त के लक्षण बताते हैं।

12.13, 12.14

अद्वेष्टा सर्वभूतानां(म्), मैत्रः(ख्) करुण एव च|
निर्ममो निरहङ्कारः(स्), समदुःखसुखः क्षमी||13||
सन्तुष्टः(स्) सततं(यँ) योगी, यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिः(र्), यो मद्भक्तः(स्) स मे प्रियः॥12.14॥

सब प्राणियों में द्वेषभाव से रहित और मित्र भाव वाला (तथा) दयालु भी (और) ममता रहित, अहंकार रहित, सुख दुःख की प्राप्ति में सम, क्षमाशील, निरन्तर सन्तुष्ट, योगी, शरीर को वश में किये हुए, दृढ़ निश्चयवाला, मुझ में अर्पित मन बुद्धि वाला जो मेरा भक्त है, वह मुझे प्रिय है। (12.13-12.14)

विवेचन- अद्वेष्टा अर्थात् किसी से द्वेष नहीं करने वाला, सभी से मैत्री रखने वाला, निर्मम अर्थात् मम् से रहित, यही मम् का भाव तो सब सर्वनाश करता है, अहङ्कार से रहित, सुख और दुःख में एक समान रहने वाला, क्षमाशील, निरन्तर सन्तुष्ट रहने वाला अर्थात् कुछ भी हुआ उसे सहज स्वीकार करने वाला, श्रीभगवान ने जो किया होगा अच्छा ही किया होगा।
कभी भगवान को दोष मत देना, अरे! मेरे साथ क्या कर दिया भगवान ने भगवान केवल प्रेम करते हैं, वे कभी किसी का बुरा नहीं कर सकते। अतः सदा अन्दर से सन्तुष्ट रहें।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः(स्), स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

अन्दर से जो सन्तुष्ट रहना सीख जाता है उसकी बुद्धि स्थिर होने लगती है। वह योगी बन जाता है, समभाव में आ जाता है। शरीर को वश में किए हुए दृढ़ निश्चय वाला, हमारा निश्चय तो थोड़े में टूटता है, वजन बढ़ा है पर जलेबी देखते ही खाना है। हमारा निश्चय दृढ़ होना चाहिए।

मय्यर्पितमनोबुद्धिः(र्)

फिर एक बार श्रीभगवान ने कहा मन और बुद्धि दोनों अर्पण कर।श्रीभगवान ने कहा ऐसा जो भक्त है, वह मुझे बहुत प्रिय लगता है।

करुणा का भाव हो, चराचर सृष्टि में वही दिखे। बिल्ली आए तब भी, कोई अन्य जीव आए तब भी, छिपकली दिखे और उसे भगाने के पीछे पड़ गए, ऐसा नहीं होना चाहिए। सबके लिए मैत्री का भाव सबके लिए करुणा का भाव हो।

भाई हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस के संस्थापक ने बड़ी सुन्दर प्रार्थना लिखी है।

कर प्रणाम तेरे चरणों में लगता हूँ अब तेरे काज।
पालन करने को आज्ञा तव मैं नियुक्त होता हूँ आज॥
अन्तर में स्थित रहकर मेरी बागडोर पकड़े रहना।
निपट निरंकुश चंचल मन को सावधान करते रहना॥
अन्तर्यामी को अन्तःस्थित देख सशङ्कित होवे मन।
पाप-वासना उठते ही हो नाश लाज से वह जल-भुन॥

भाई जी आगे कहते हैं-

जीवों का कलरव जो दिनभर सुनने में मेरे आवे।
तेरा ही गुण-गान जान मन प्रमुदित हो अति सुख पावे॥

जो भी मिले, वह जो भी बोले भला या बुरा, उसे तेरा ही गुणगान समझ मन प्रमुदित हो जाए।

तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि! तुझमें यह सारा संसार।
इसी भावनासे अन्तरभर मिलूँ सभी से तुझे निहार॥

तुम ही सर्वत्र व्याप्त और तुम में सबको देखकर सबसे मिलूँ।

प्रतिपल निज इन्द्रिय-समूह से जो कुछ भी आचार करूँ।
केवल तुझे रिझाने को, बस, तेरा ही व्यवहार करूँ॥

हर समय अपनी सारी इन्द्रियों से जो कुछ भी करूँ, तुझे रिझाने के लिए करूँ। निरपेक्ष भाव से सब तेरे लिए करूँ। श्रीभगवान आगे कहते हैं-

12.15

यस्मान्नोद्विजते लोको, लोकान्नोद्विजते च यः|
हर्षामर्षभयोद्वेगै:(र्), मुक्तो यः(स्) स च मे प्रियः||15||

जिससे कोई भी प्राणी उद्विग्न (क्षुब्ध) नहीं होता और जो स्वयं भी किसी प्राणी से उद्विग्न नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष (ईर्ष्या), भय और उद्वेग (हलचल) से रहित है, वह मुझे प्रिय है।

विवेचन- यस्मान्नोद्विजते लोको, जिससे किसी प्राणी को उद्वेग नहीं होता, जिससे किसी को कष्ट नहीं होता, वह भक्त ऐसा होता है कि किसी को कष्ट नहीं होने देता। मन से, वचन से और काया से किसी को भी कष्ट नहीं होने देता। काया की बात तो दूर मन और वचन से भी किसी के प्रति अपराध नहीं करता और न ही स्वयं किसी से उद्विग्न होता है। उद्विग्न होना अर्थात् चिढ़ जाना, क्षुब्ध हो जाना, क्रोध करना, मन में विष्णणता आ जाना, निराश हो जाना। जो हर्ष या क्षणिक आनन्द और अमर्ष या किसी से ईर्ष्या न हो, हर्ष और अमर्ष से जो मुक्त हो जाता है।

भय और उद्वेग से बाहर आ जाता है। ये सभी अवसाद के कारण है, कोई भय से, कोई उद्वेग से तो कोई ईर्ष्या के कारण कुण्ठाग्रस्त हो जाता है। जो इन सभी से अलग हो जाता है, जो दूसरे की सुख में सुखी हो जाता है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। दूसरों के सुख में जो दुःख मनाता है या दूसरों के दुःख में खुश होता है, वह जीवन में कभी सफल नहीं हो सकता है। हम दूसरे के दुःख में दुःखी हो जाए और दूसरे के सुख में आनन्दित हो जाए।
आनन्द यह सुख का पर्याय नहीं, सुख का अन्तिम छोर दुःख है, जैसे मीठा खाया तो सुख मिला परन्तु रक्त शर्करा(blood sugar) बढ़ गयी तो दुःख, ऐसे ही हर सुख का अन्तिम छोर दुःख होता है, आनन्द का अन्तिम छोर परमानन्द होता है।

तुकारामजी महाराज कहते हैं-

आनन्दाचे डोही आनन्द तरङ्ग।

आनन्द के तालाब में उतरते ही आनन्द की तरङ्गे उठने लगती हैं। सुख शरीर की अनुभूति है और आनन्द अन्तर्मन की अनुभूति है और जो शरीर के सुख की अनुभूति के पीछे पड़ गया वह अन्ततोगत्वा दुःख में पड़ेगा। अतः जो सुख और दुःख में समान रखना सीख गया, आपको आश्चर्य होगा इसी लर्न गीता उपक्रम में एक महिला प्रशिक्षिका थीं, कोविड के समय उनके पति की सुबह मृत्यु हो गई, उस दिन संध्या उन्होंने कक्षा में सेवा प्रदान की। पता चला तो सांत्वना के लिए फोन कर बात की तो कहने लगी, भैया आज सुबह उनकी मृत्यु अस्पताल में हो गई, घर लाने भी नहीं दिया, नगरपालिका वालों ने ही क्रियाकर्म कर दिया। मैंने सोचा आज उनकी मृत्यु पर घर में गीताजी के श्लोक गूँजें इससे अच्छा और क्या हो सकता है? वे कक्षा में उपस्थित हो गई, गीताजी का गान किया। आश्चर्य हुआ, पहले लगा था पहले मृत्यु हुई होगी।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

सुख और दुःख में समान हों। भगवान सोलहवें श्लोक में कहते हैं।

12.16

अनपेक्षः(श्) शुचिर्दक्ष, उदासीनो गतव्यथः|
सर्वारम्भपरित्यागी, यो मद्भक्तः(स्) स मे प्रियः||16||

जो अपेक्षा (आवश्यकता) से रहित, (बाहर-भीतर से) पवित्र, चतुर, उदासीन, व्यथा से रहित (औरः सभी आरम्भों का अर्थात् नये-नये कर्मों के आरम्भ का सर्वथा त्यागी है, वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

विवेचन- कैसे भक्त भगवान को प्रिय होते हैं, जो अनपेक्ष है, अपेक्षा से परे हैं। जो अन्दर और बाहर से पवित्र हैं। स्नान कर बाहर से पवित्र हो सकते हैं, परन्तु अन्दर से पवित्र होने के लिए हृदय से प्रार्थना करनी पड़ती है। दक्ष या सावधान, उदासीन का अर्थ उदास नहीं होता। उदासीन अर्थात् सन्तुलित, अपने आप को व्यथित या दुःखी नहीं होने देता, सर्वारम्भपरित्यागी अर्थात् नित नए कार्य आरम्भ करता है परन्तु कार्यों के फल का त्याग कर देता है। वे मेरे भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय लगते हैं।

12.17

यो न हृष्यति न द्वेष्टि, न शोचति न काङ्क्षति|
शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान्यः(स्) स मे प्रियः||17||

जो न (कभी) हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है (और) जो शुभ-अशुभ कर्मों से ऊँचा उठा हुआ (राग-द्वेष रहित) है, वह भक्तिमान् मनुष्य मुझे प्रिय है।

विवेचन- जो न हर्षित होता है, आनन्द का आवेग, ट्रेन बहुत विलम्ब से चल रही थी और आ गई, अरे! आ गई! आ गई! ट्रेन, ट्रेन में बैठने के साथ आवेग समाप्त हो जाता है। सुख और दुःख दोनों कम हो जाते हैं। कोई परिजन मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, तो आरम्भ के बारह दिन जितना दुःख होता है, वैसा आगे नहीं रहता, महीने भर में बहुत कम हो जाता है, धीरे-धीरे एक दो वर्ष में समाप्त हो जाता है। इतने दिन बाद समाप्त हो सकता है, वह तत्समय भी समाप्त हो सकता है क्योंकि सुख और दुःख दोनों नश्वर हैं। न काङ्क्षति, वह कोई आकाङ्क्षा नहीं करता। शुभ-अशुभ कर्मों से ऊँचा उठ जाता है, श्रीभगवान ने यहाँ शुभ-अशुभ कर्म क्यों कहा, भगवान स्वयं अर्जुन को अशुभ कर्म हेतु कहे हैं, कह रहे हैं, तू इन्हें मार इनकी हत्या कर। हत्या अशुभ कर्म है, परन्तु कर्त्तव्य के भाव से किया गया अशुभ कर्म भी ठीक है, परन्तु मात्र शत्रुता के भाव से करना ठीक नहीं है। श्रीभगवान ग्यारहवें अध्याय में विश्वरूप का दर्शन कराते बार-बार कह रहे हैं तू मार इन्हें, तू निमित्त मात्र बन।

निमित्तमात्रम् भव सव्यसाचिन्।।

शेष सब मैने कर दिया है।

द्रोणं(ञ्) च भीष्मं(ञ्) च जयद्रथं(ञ्) च,
कर्णं(न्) तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं(ञ्) जहि मा व्यथिष्ठा,
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्॥11.34॥

तू इन्हें मार कर जीत प्राप्त कर, मै तुझे इसका श्रेय देना चाहता हूँ।
इसी अध्याय के अन्त में श्रीभगवान कहते हैं कि जो निर्वैर हो कर आयेगा वही मुझे प्राप्त करेगा।

निर्वैरः (स्) सर्वभूतेषु, यः (स्) स मामेति पाण्डव॥

तू निर्वैर हो जा, तुम इन्हें इस कारण नहीं मार रहे हो कि ये तुम्हारे शत्रु हैं, इन्होंने तुम्हारे राज्य की एक महिला का चीरहरण किया है, इस कारण मार रहे हो, आततायी दुःशासन, उसे आज्ञा देने वाले दुर्योधन और आँखों पर पट्टी बाँधे, द्रोण, भीष्म आदि उसी एक दल के लोग हैं। अबला पर अत्याचार करने वाले दुर्योधन के दल वाले सभी देहदण्ड देने के योग्य हैं, चला बाण, इन्हें मार। अगर ऐसा करेगा तो अशुभ कर्म का दोष नहीं लगेगा।
भगवान आगे के श्लोक में बहुत प्यारी बात कहते हैं।

12.18, 12.19

समः(श्) शत्रौ च मित्रे च, तथा मानापमानयोः|
शीतोष्णसुखदुःखेषु, समः(स्) सङ्गविवर्जितः||18||
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी, सन्तुष्टो येन केनचित्|
अनिकेतः(स्) स्थिरमतिः(र्), भक्तिमान्मे प्रियो नरः||19||

(जो) शत्रु और मित्र में तथा मान-अपमान में सम है (और) शीत-उष्ण (शरीर की अनुकूलता-प्रतिकूलता) तथा सुख-दुःख (मन बुद्धि की अनुकूलता-प्रतिकूलता) में सम है एवं आसक्ति रहित है (और) जो निन्दा स्तुति को समान समझने वाला, मननशील, जिस किसी प्रकार से भी (शरीर का निर्वाह होने न होने में) संतुष्ट, रहने के स्थान तथा शरीर में ममता आसक्ति से रहित (और) स्थिर बुद्धिवाला है, (वह) भक्तिमान् मनुष्य मुझे प्रिय है। (12.18-12.19)

विवेचन- जो मित्र और शत्रु में सम हो जाता है, ऐसा नहीं कि शत्रु सामने से आए तो फड़फड़ाने लगे। रक्तचाप चढ़ने लगा, अरे! अपना ही अहित क्यों करना, शत्रुता को बाहर निकाल, फैंक दें उसे। मित्र और शत्रु को समान मानना सीख।

तथा मानापमानयोः, मान-अपमान में सम रहो। सामने से गाली सुनकर हम क्रोध कर लेते, परन्तु जो हमारे पीछे गाली देते हैं, उनका हम क्या करते हैं?

एक बहु के पीहर से कुछ लोग आने वाले थे उसने सास को बोला माँ! मुझे किट्टी आयोजन में जाना था। आप थोड़ा सम्भाल लेना। सास ने कहा तू मत जा, क्या आवश्यक है? बहु बोली मुझे जाना होगा, जो नहीं आते हैं उनकी बुराई होती है। मैं जा रही हूँ और जब किसी अन्य अनुपस्थित की बुराई करने में जब सब लग जाएँगी तो मैं आ जाऊँगी। हमारा स्वभाव बन गया है, पीठ पीछे बुराई करना। कई लोग हमारी बुराई पीछे से करते रहते हैं, अतः सामने की बुराई सुनकर भी सम रहे। मान-अपमान में सम रहो, भगवान की यह शिक्षा अद्भुत है।

शीतोष्णसुखदुःखेषु- शीत-ऊष्ण और सुख-दुःख में भी समान रहें, अभी सर्दी आ गई बिना गीजर चलाए, स्नान करने चले जाते हैं तो आरम्भ में कठिनाई होती है परन्तु कुछ देर में ठीक लगने लगता है क्योंकि यह शीत-ऊष्ण का अनुभव भी क्षणभङ्गुर है।

इन सभी में सम भाव रख, आसक्ति से बाहर निकल। निन्दा और स्तुति में एक समान बन जा और मौनी बन जा। एक मौनी बाबा थे, बहुत प्रसिद्ध जो अन्दर मनन करते हैं, वे हैं मौनी और इसी से मुनि होते हैं, जो मनन करते हैं और मनन करने के लिए मौन रहना पड़ता है। बाहर की बात बन्द किए बिना अन्दर से संवाद नहीं हो सकता।

सन्तुष्टो येन केनचित्- किसी भी स्थिति में सन्तुष्ट रहना सीख।
अनिकेतः(स्)- जिसका घर नहीं है, जो रहने के स्थान तथा शरीर में ममता आसक्ति से रहित हो। अनिकेत भगवान शिव का एक नाम है, उनका कोई घर नहीं है, कहीं रह जाते हैं, पहाड़ पर, श्मशान में भी दिगम्बर हैं, आकाश ही उनका वस्त्र भी है और उसी के नीचे रह जाते हैं। मृत्यु होने कोई घर में नहीं रखने वाला, तुरन्त बाहर निकाल देते हैं। तो फिर उस घर का मोह क्यों करना।

स्थिरमतिः(र्)- स्थिर मति बनो,

ऐसे भक्त मुझे बहुत प्यारे लगते हैं। भगवान ने भक्ति की बात कही और भक्त के लक्षण भी बताए। अन्तिम श्लोक में भगवान ने कहा-

12.20

ये तु धर्म्यामृतमिदं(य्ँ), यथोक्तं(म्) पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा, भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥12.20॥

परन्तु जो (मुझ में) श्रद्धा रखने वाले (और) मेरे परायण हुए भक्त इस धर्ममय अमृत का जैसा कहा कहा है, (वैसा ही) भली भांति सेवन करते हैं, वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।

विवेचन- यह धर्म का अमृत जिसप्रकार मैंने कहा वैसा ही ग्रहण करते हैं, मुझ में श्रद्धा रखते हैं और जैसा बताया है वैसा भली भाँति सेवन करते हैं, वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।

इस प्रकार भक्तियोग बारहवें अध्याय का विवेचन पूर्ण हुआ।
हरये नमः। हरये नमः। हरये नमः।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- अम्बिका दीदी
प्रश्न- कर्म करते हुए कर्म फल की इच्छा का त्याग कैसे सम्भव है? इसका क्या अर्थ है?
उत्तर- कर्म फल की आकाङ्क्षा दो प्रकार की होती है-
1) भौतिक
2) अधिभौतिक

चूँकि हम मानव जीवन में हैं तो हम कुछ कर्म भौतिक फल के लिए करते हैं। किन्तु यदि हमारे समस्त कर्म भौतिक फल के लिए ही किए जाएँगे तो हम भक्त भी नहीं बन पाएँगे। हम मात्र याचक बन कर रह जाएँगे। युधिष्ठिर ने भी भौतिक आकाङ्क्षा हेतु राजसूर्य यज्ञ किया था। यदि हम भक्त बनना चाहते हैं तो हमें हम निरपेक्ष होना होगा। कर्म करके किसी भी प्रकार की अपेक्षा का त्याग करना होगा। कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने के लिए परिश्रम पूरा कीजिए किन्तु उसके फल से अप्रभावित रहिए। ज्ञान की प्राप्ति अधिभौतिक है।

प्रश्नकर्ता- कविता दीदी
प्रश्न- श्रीमद्भगवद्गीता को सर्वप्रथम किसने लिखा?
उत्तर- श्रीभगवान ने इसे चौथे अध्याय में समझाया है।

श्रीभगवानुवाच-
इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।4.1।।

यह परम्परा से प्राप्त ज्ञान है। सूर्योदय के साथ ही इस ज्ञान का भी प्राकट्य हो गया था। श्रीभगवान ने यह सर्वप्रथम विवस्वान अर्थात सूर्य को समझाया, सूर्य ने मनु को, मनु ने विदुर को और तत्पश्चात राजाओं तक यह ज्ञान पहुँचा। अन्ततः यह योग नष्ट हो

गया, श्रीभगवान के द्वारा पुनः प्रकाश में आया।

यह परम्परा महादेव से चली आ रही है। इसका कोई अन्त नहीं है।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।4.3।।

इतना पुरातन योग मैं तुझे बता रहा हूँ क्योंकि हे अर्जुन! तू मेरा भक्त ही नहीं सखा भी है। मेरा अत्यन्त प्रिय है।

प्रश्नकर्ता- कविता दीदी
प्रश्न- श्रीमद्भगवद्गीता का हिन्दी अर्थ पढ़ने के लिए सबसे उपयुक्त पुस्तक कौन सी है?
उत्तर- गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित स्वामी रामसुखदास जी द्वारा लिखी हिन्दी टीका "साधक संजीवनी" के नाम से है। इसे आप गीता परिवार की वेबसाइट पर भी पढ़ सकते हैं और निःशुल्क डाऊनलोड भी कर सकते हैं अथवा विभिन्न माध्यमों से क्रय भी कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता- पूर्णिमा दीदी
प्रश्न- प्राणायाम के विषय में बताइए। साधकों को कौन से प्राणायाम करने चाहिये?
उत्तर- इसके लिए आपको योग विशेषज्ञ के पास जाना चाहिए। प्राणायाम अलग-अलग प्रयोजनों के लिए होता है। यदि आपको अपना वजन कम करना है तो सूर्य नाड़ी को सक्रिय कर सत्ताईस बार श्वास लेना चाहिए। इससे वजन घटाना आरम्भ हो जाएगा। यदि आपको अपना वजन बढ़ाना है तो चन्द्र नाड़ी को सक्रिय कर श्वांस लेने की उक्त लिखित प्रक्रिया करनी चाहिए। इससे आपका वजन बढ़ना आरम्भ हो जाएगा। यदि आप भगवान के सामने बैठकर माला भी कर रहे हैं तो एक नाम के साथ श्वांस अन्दर और एक नाम के साथ श्वस बाहर। इतना करने से भी सुन्दर प्राणायाम हो जाता है। यदि आप घूम रहे हैं तो भी एक पग डाला और उसके बाद दूसरा। दो बार श्वास बाहर निकाली। इसे कहते हैं विभाजित भस्त्रिका। अगले दो पग में अन्दर खींची। इसके अद्‌भुत परिणाम आते हैं।

इसलिए मात्र प्रश्न के उत्तर में प्राणायाम के सम्बन्ध में लम्बी बात करना सम्भव नहीं है। हमने बच्चों के साथ कुछ प्रयोग करके उनके दाएँ और बाएँ दोनों मस्तिष्क को एक साथ जाग्रत कर दिया। एक बार में मस्तिष्क का एक भाग ही कार्य करता है।

सामान्य साधकों के लिए माला के प्रत्येक मनके के साथ (श्रीकृष्ण शरणम् मम) एक श्वास अन्दर और एक के साथ श्वास बाहर। एक सौ आठ बार करना पर्याप्त रहेगा।

।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यूँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'भक्तियोग' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||